Chapter-7

सप्तम अध्याय

व्हायोलिन वाद्य पर शास्त्रीय संगीत की अवधारणा से उत्पन्न वातावरण तथा सौन्दर्यशास्त्र के दृष्टि से विवेचन ।

सौन्दर्यशास्त्र, कला एवं संगीत

श्रीमद्भगवत्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है : "विश्व में व्याप्त समस्त सौन्दर्य में मेरा ही तेज विद्यमान है, अथवा विश्व का समस्त सौन्दर्य मुझ में निहित है"।[1] अतः सौन्दर्य एक ईश्वरीय गुण है । सौन्दर्य भावना मनुष्य के अन्तःकरण की परम निधि है । यह मनुष्य को ईश्वर द्वारा प्रदत्त एक विशिष्ट वरदान है । सौन्दर्य-चेतना मनुष्य का नैसर्गिक गुण है । सौन्दर्य-प्रेम मनुष्य की मानवता का प्रतीक है । जब कोई वस्तु भौतिक एवं मानसिक रूप से हमें इन्द्रिय आनन्द का अनुभव कराती है तो वह सौन्दर्य की वस्तु है । अतः इन्द्रिय सुख की अनुभूति ही सौन्दर्य है । वास्तव में 'सौन्दर्य' मानव का सहज गुण भी कहा जा सकता है । अतः सौन्दर्य पर निरन्तर चिन्तन होता रहा है ।

सौन्दर्य दो प्रकार का होता है - एक तो 'बाह्य' जो कि केवल हमारी इन्द्रियों को सुख का अनुभव कराता है, और दूसरा 'आन्तरिक', जो ऊपरी सतह पर क्षण भर के सौन्दर्य से मोहित नहीं होता, किन्तु अपनी आत्मा से उसका अनुभव कराता है । यही सौन्दर्य परम सत्य की प्राप्ति है । भारतीय संस्कृति इसी सौन्दर्य प्राप्ति को अपना उद्देश्य मानती है । वस्तुतः सुन्दर की अवधारणा भारतीय वाङ्मय में प्राचीन काल से ही चली आ रही है । सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् पर ही भारतीय संस्कृति की मूल धारणा टिकी हुई है । भारतवर्ष में सौन्दर्य-तत्त्व मीमांसा ऋगवेद से आरम्भ हुई है। ऋगवेद में सौन्दर्य को श्री नाम से सम्बोधित किया गया है । भारतीय संस्कृति में सौन्दर्य का लक्ष्यबिन्दु सुन्दरता न होकर रस है । रस आनन्द का सीधा स्त्रोत है । अतः यहाँ रस का अभिप्राय विशुद्ध रसानुभूति अथवा सौन्दर्यानुभूति के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए । रस भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है । जिस प्रकार पाश्चात्य संस्कृति में सौन्दर्य की अवधारणा ही बुनियाद है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति की अवधारणा का मूल है रस, जो की परम आनन्द का सूचक है । इसी सौन्दर्य को एक स्वतन्त्र शास्त्र का रूप दिया गया है । सौन्दर्य-तत्त्व पाश्चात्य जगत में दर्शनशास्त्र का एक प्रमुख विषय रहा है । इसे युनानी दार्शनिकों ने पुरातन काल से ही अपने चिन्तन का विषय बनाया था । इस विषय को अन्य विषयों की भाँति स्वतन्त्र विषय बनाने का श्रेय 18वीं शताब्दी के जर्मन दार्शनिक बामगार्टन को दिया जाता है । वर्तमान युग में सौन्दर्यशास्त्र एक स्वतन्त्र शाखा के रूप में विकसित हुआ है । इस शाखा का मूल

उद्देश्य सौन्दर्य का अध्ययन एवं मूल्यांकन करना है। सौन्दर्यशास्त्र आंग्ल भाषा के 'एस्थेटिक्स' के पर्यायवाची के रूप में हिन्दी में प्रचलित हुआ है । एस्थेटिक्स शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द 'एस्थेसिस' से हुई है । जिसका अर्थ है - इन्द्रिय संवेदना। तद्नन्तर इस एस्थेसिस से एस्थेटिक बना । पहले पाश्चात्य साहित्य में भी एस्थेटिक शब्द का प्रचलन था । स्वयं बामगार्टन ने भी एस्थेटिक शब्द का ही प्रयोग किया है । तत्पश्चात् एस्थेटिक से इस शब्द का प्रयोग 'एस्थेटिक्स' हो गया । अर्थात् बहुवचन रूप प्रचलित हो गया । और आज तक यही शब्द प्रचार में है । इस प्रकार एस्थेटिक्स का अर्थ होता है वह शास्त्र जो इन्द्रिय संवेदना के सिद्धान्तों का अध्ययन करे । 18वीं शताब्दी में बामगार्टन ने एक ग्रन्थ की रचना की, जिसका शीर्षक था 'एस्थेटिक'। यह ग्रन्थ लेटिन भाषा में लिखा गया था । तभी से एस्थेटिक शब्द का प्रयोग व्यवहार में आया और यह एक स्वतन्त्र विषय के रूप में विकसित हुआ । इससे पूर्व सौन्दर्य अन्य शास्त्रों, जैसे - दर्शनशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि का ही एक हिस्सा था तथा इसका अध्ययन उन शास्त्रों के अन्तर्गत ही किया जाता था । इससे तात्पर्य यह हुआ कि सौन्दर्यशास्त्र एक स्वतन्त्र शाखा के रूप में सौन्दर्य के अध्ययन एवं गुण आंकने का शास्त्र है । इसे कुछ लोग नन्दनशास्त्र अथवा लालित्यशास्त्र भी कहते हैं । आज के युग में सौन्दर्यशास्त्र सभी ललित-कलाओं का सैद्धान्तिक विवेचन का क्षेत्र है ।

'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में 'हेलमुट कुन्न' ने सौन्दर्यशास्त्र को कलाओं और उनसे सम्बन्ध (मानव) व्यवहार तथा अनुभूति का सैद्धान्तिक अध्ययन बताया है।[2]

हीगेल ने 'दि फिलासफी ऑव् आर्ट्स' में सौन्दर्य का अर्थ कला दर्शन माना है।[3]

सेन्ट थामस के अनुसार इन्द्रिय माध्यम से तर्क की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है।[4]

बामगार्टन के मतानुसार एस्थेटिक्स इन्द्रिय बोध का विज्ञान है, जो संवेदनाओं का विश्लेषण करने की क्षमता रखता है।[5]

उपर्युक्त परिभाषाओं से दो बातें स्पष्टतः सामने आती है -

1. सौन्दर्यशास्त्र कला का सैद्धान्तिक विवेचन है । और
2. कला से सम्बन्धित मानव-व्यवहार और सैद्धान्तिक अध्ययन है ।

मानव मूलतः सौन्दर्य प्रेमी है । सौन्दर्य के प्रति वह सदा ही संवेदनशील रहा है । प्राकृतिक सौन्दर्य से परे अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए ही कला का निर्माण हुआ ।

प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रेरित होकर वह सुन्दर कलाकृतियों का सृजन करने लगा । मानव की भावनात्मक अभिव्यक्ति के कारण कलात्मक सृजन सम्भव होता है । कला मनुष्य का अनुभव है और उसके विचारों एवं भावों को अभिव्यक्त करने का एक माध्यम । समस्त सृष्टिकारी मानवीय क्रियाओं का नाम कला है । अतः जिस कृति का सृजनकर्ता मानव है, वह कला है । प्राकृतिक-कला का सृजनकर्ता परमात्मा है, जिसकी लीला अपार है ।

'कला' शब्द भारतीय भाषाओं में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आ रहा है । कला और सौन्दर्य एक दूसरे के पूरक है । कला का अर्थ सुन्दर को प्राप्त करना अर्थात सौन्दर्य की साधना ही कला है । कला वह मानवीय क्रिया है, जिसका विशेष लक्षण ध्यान दृष्टि से देखना, चिन्तन करना, संकलन करना एवं स्पष्ट रूप में प्रकट करना है । सौन्दर्य प्रत्यक्षीकरण में कला का प्रमुख स्थान है । कला जनित सौन्दर्य की अनुभूति भाव स्तर से परे लोकत्तर है ।

कला की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी मानवीय क्रिया कला के अन्तर्गत आती है । इस तरह से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कला का अंश विद्यमान है । इस दृष्टि से कला का क्षेत्र और रूप बहुत व्यापक और समृद्ध हो जाता है । प्रत्येक विचारक को अपनी प्रकृति, बुद्धि और रूचि के आधार पर कला का विश्लेषण और वर्गीकरण करने का अवसर प्राप्त हुआ । कला की सर्वमान्य परिभाषा का निर्धारण एक दुष्कर कार्य माना जाता है। सामान्यतः कला को दो भागो में विभाजित किया जाता है । प्रथम उपयोगी कलाएँ, द्वितीय ललित-कलाएँ । उपयोगी कला मनुष्य के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगिता पूर्ति के साधनों की अभिवृद्धि करती है। इनके सृजक को शिल्पकार कहा जाता है । कला साहित्य में इन्हें शिल्पी संज्ञा से सम्बोधित किया गया है । शिल्पकार उपयोगी वस्तुओं का सृजन कर उन्हें मनोरम रूप प्रदान कर उनकी उपयोगिता में वृद्धि करता है । उपयोगी कलाएँ केवल भौतिक सुख के साधनों को उपलब्ध कराती है।

सौन्दर्यानुभूति प्रदान करनेवाली कलाओं को ललित-कलाएँ कहते हैं। ललित-कलाएँ कलाओं का एक विशेष विभाजन है, जिसके अन्तर्गत कुछ चुनी हुई कलाएँ रखी गई हैं। जैसे - चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, काव्यकला एवं संगीत-कला। ये मुख्यत पाँच है।

सौन्दर्य भावना की सन्तुष्टि के लिए नव-सृजन की आतुरता ललित-कलाओं को जन्म देती है। ललित-कलाएँ शीलसम्बर्द्धन के साथ-साथ आत्म उत्थान तथा आध्यात्मिक एवं नैतिक पक्षों को उजागर करती है। इनके सृजन में प्रतिभा, कल्पना, अनुभूति, नवीन सांस्कृतिक उपलब्धता आदि तत्त्वों का समावेश रहता है । ये मनुष्य की विवेकशीलता, चिन्तनशीलता तथा सांस्कृतिक प्रगति के द्वार खोलती है । ललित-कला को मनस्तत्त्व कहा गया है, जिसका अर्थ है 'मानसिक सुख' अथवा 'मानसिक आनन्द' । ललित-कलाएँ सौन्दर्य का साक्षात् स्वरूप है। अर्थात् यह सौन्दर्य को मूर्त रूप प्रदान करती है। अतः ललित-कलाओं के अन्तर्गत वे कलाएँ आती है, जिनका एकमात्र प्रयोजन देखकर, सुनकर अथवा पढ़कर मानव हृदय को आनन्द प्राप्त कराना होता है । इन कलाओं का उद्देश्य कोई जीवनोपयोगी सामान बनाना नहीं है। ललित-कलाएँ उपयोगी कलाएँ न होते हुए भी मानव-जीवन को अन्य प्रकार से प्रभावित करती हैं। ये आनन्ददायक होने के कारण इन्द्रिय सुख के साथ-साथ मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक सुख भी प्रदान करती है और मानवीय जीवन में मूल्यों की वृद्धि करती है। यद्यपि ललित-कलाओं से कोई भौतिक सुख प्राप्त नहीं होता, तथापि इनसे हृदय और मस्तिष्क को अतीव आनन्द की प्राप्ति होती है । कला सृजक अपनी अनुभूति को वाँछित माध्यमों द्वारा अभिव्यक्त करता है । ललित-कलाओं के सृजक नवीन उद्भावनाओं को मूर्त रूप देने के प्रयास में संलग्न रहते हैं । उनका यह कार्य ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा द्वारा सफल अभिव्यक्ति में परिणित होता है । कलाकार भौतिक समृद्धि से विरत, सांसारिकता से विरत रहते हुए कला सृजन के दायित्त्व का निर्वाह करता है । कला सृजन के क्षणों में कलाकार मन, वाणी और बुद्धि से अगोचर कल्पनालोक में विचरण करता है, यहीं अवस्था उसके लिए आनन्दानुभूति प्रदायिनी है । कुशल संगीतज्ञ द्वारा प्रस्तुत स्वरलहरी से हमें अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है । अलौकिक आनन्द से प्राप्त सुख आत्मा का विशेष आहार होता है । अतः वह कलाएँ जिनसे हमें ऐसे आनन्द की प्राप्ति होती है, ललित-कलाएँ कहलाती है।

ललित-कला की उपलब्धिता को दो वर्ग में रखा जा सकता है, प्रथम ये सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों के सद्संस्कारों को जाग्रत कर उन्हें सुसंस्कृत नागरिक बनाती है, उनके आध्यात्मिक क्षेत्र का विस्तार करती है साथ ही अनन्तसत्ता की ओर उन्मुख करती है और उसकी प्राप्ति का मार्ग सुगम करती है । द्वितीय, सौन्दर्यबोध की असाधारण सामग्री का सृजनकर राष्ट्रगौरव की वृद्धि करती है। इस प्रकार ललित-कलाएँ मनुष्य के सांस्कृतिक

उत्थान के साथ-साथ मानव के आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है। इन्हीं मान्यताओं के अनुरूप ललित-कलाओं का अनुशीलन एक सुसंस्कृतिक नागरिक के लिए उपयोगी ही नहीं अनिवार्य भी है । ललित-कलाओं के सृजक कलाकार तथा रसिक प्रेक्षक ईश्वर प्रदत्त असाधारण प्रतिभा सम्पन्न विशिष्ट प्राणी होते है।

ललित-कलाओं में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति विभिन्न माध्यमों द्वारा होती है। ये ललित-कलाएँ समय-समय पर विभिन्न देशों की संस्कृतिओं से प्रभावित होकर समृद्ध बनी हैं, परन्तु इनमें संगीत-कला किसी एक देश में ही विकसित नहीं हुई, बल्कि संसार के सभी देशों में संगीत-कला विकसित हुई है । किसी भी देश की सभ्यता संगीत के प्रभाव से बच न सकी । ग्रीस, चीन, जापान, मिस्र, युरोप आदि सभी देशों की संस्कृति में संगीत का विशेष स्थान था । संगीत को समस्त मानव धर्म की भावनाओं की भाषा माना जाता है । अर्थात् संगीत किसी भी देश का हो, अपनी भावनाओं को दूसरों पर व्यक्त करने और पहुँचाने की क्षमता रखता है ।

ललित-कलाओं में से संगीत-कला का भी सौन्दर्यशास्त्र के साथ गहरा सम्बन्ध है । यह ललित-कलाओं में सबसे सुन्दर और मनोहर कला है । इस कला द्वारा कलाकार अपने भावों को सुन्दर रूप प्रस्तुत करता है जिसका प्रेक्षक द्वारा भावाभिव्यंजन होता है । अतः दोनों को ही आनन्द की प्राप्ति होती है ।

संगीत-कला मुख्यतः सौन्दर्यानुभूति ही कराती है। यह सर्वाधिक सूक्ष्म कला है। इसका माध्यम मात्र 'ध्वनि' है । संगीत का सौन्दर्य दिव्य है। जहाँ संगीत है, वहाँ ईश्वर का वास है । संगीत मनुष्य को दिया गया एक ईश्वरीय वरदान है, जो मधुर ध्वनि तरंग का सागर है। यह सागर एक सहज आनन्द का स्त्रोत है जो देवता, दानव, मनुष्य तथा पशु-पक्षियों को ही नहीं बल्कि वनस्पति को भी अपने विशाल अन्तर में समेट लेता है ।

भारत में संगीत का आरम्भ ब्रह्मा जी द्वारा प्रतिपादित 'सामवेद' के संगीत पक्ष से माना जाता है । अथर्ववेद से रस की व्युत्पत्ति मानी जाती है । संगीत के प्रमुख पक्ष गायन, वादन और नृत्य है। संगीत रत्नाकर के अनुसार 'गीतं वाद्यं च नृत्यं त्रयं संगीत मुच्चते' संगीत-कला प्रस्तुतीकरण के अन्तर्गत आती है । यह वह सुक्ष्म वाणी है जिससे स्थुल एवं व्यवहारिक भाषा

जन्म पाती है । क्योंकि इसका प्रदर्शन एक विशिष्ट समय तथा अवधि में होता है । इसमें हृदय के गहन भाव शब्द द्वारा प्रकट न होकर संगीत के माध्यम से प्रस्फुटित होते है । इसमें भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वर है, जो सूक्ष्म तथा अन्तर्मुखी होने से भावों को अधिक प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत करती है। स्वर में गतिमयता है, जो अन्तःअनुभूति की अपेक्षा सत्य के निकट है । यह भाव विचारों को जड़ तत्त्वों से मुक्त करता है । इसमें मानसिक अन्तःमुखरता अधिक है । संगीत में ईश्वर अप्रच्छन रूप में व्यक्त होता है। फिर भी संगीत में भाव उद्वेग की अधिकता रहती है । शापेनहावर के मतानुसार, "संगीत की विशिष्टता के कारण इन्हें अन्य कलाओं के समकक्ष नहीं रखा जा सकता । क्योंकि अन्य कलाएँ विचारों और भावों की अभिव्यक्ति है, जबकि संगीत विचारों के क्षेत्र में इच्छा को प्रकाशित करता है । संगीत के द्वारा ये इच्छाएँ कुछ समय के लिए सन्तुष्ट हो जाती है"।[6] भक्तिभाव से भक्त जब ईश्वर से आत्मनिवेदन करता है तो उस समय अन्य इच्छाएँ तिरोहीत हो जाती है, और ईश्वर के भावात्मक निकटत्त्व का आभास बलवती हो जाता है । अतः संगीत अन्य सभी कलाओं से विशिष्टता रखता है । संगीत को ईश्वर प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन इसलिए माना जाता है कि संगीत की रसात्मकता साधक के चित्त को बान्धे रखती है । रसात्मक आनन्द में डूबा व्यक्ति अपने भौतिक परिवेश से अलग हो जाता है । उसका अहम् गल जाता है और ईश्वर से तारतम्य स्थापित हो जाता है ।

संगीत के दो तल हैं - स्वर और लय । संगीत में अर्थ सूक्ष्म स्वरों के कम्पन से रूपायित होती है । संगीत का वाहन स्वर है, यह गतिशील है । इसकी गतिशीलता ही संगीत के प्रभाव का आधार है । गति में सन्तुलन और लय के लिए सुरों में संगति अपेक्षित है । गति, माधुर्य और लयात्मकता का समन्वय संगीत को सभी कलाओं से अधिक प्रभावशाली और व्यापक बनाता है ।

संगीत स्वरों का विस्तार है, स्वरों का वैभव संगीत का 'रस' है । संगीत प्रेम, द्वेष आदि भावों को व्यक्त करता है जो स्वरों के माध्यम से ही व्यक्त होते है, यही स्वर अर्थ बोधक बन जाते हैं । संगीत की स्वर सत्ता को 'नाद ब्रह्म' कहा गया है । स्वरों के माध्यम से जिस आनन्द अंश की अनुभूति होती है, वही सौन्दर्यानुभूति है । संगीत-कला इसी आनन्दानुभूति की, परमतत्व की प्राप्ति का माध्यम है, आनन्द और सौन्दर्य दोनों ही अखण्ड एवं निरपेक्ष अनुभूति है।

जर्मन के कवि गेटे के अनुसार, "संगीत विज्ञान और दर्शने से अधिक प्रभावी है । संगीत का आनन्द तात्कालिक है । उसका स्वरूप बौद्धिक और भावात्मक है । उसमें आनन्द, शोक, भय, वीरता, विजय और पराजय सभी भावों को स्वरों द्वारा प्रभावी ढंग से उत्पन्न करने की क्षमता है"।[7] गेटे ने संगीत को इसी आधार पर विज्ञान और दर्शन से उच्च माना है । संगीत के प्रभाव से आविर्भूत होने पर रसिक के हृदय में एक ऐसी अनुभूति उत्पन्न होती है कि उसमें सांसारिकता के प्रति एक उदासीनता भाव उत्पन्न हो जाता है और उसे ब्रह्मानन्द की अनुभूति होने लगती है । प्लेटो का मत है कि, आत्मा के लिए संगीत का वही महत्त्व है जो शरीर के लिए व्यायाम का । पाश्चात्य विद्वान भी संगीत को सत्य, शिव एवं सुन्दर की प्रतीति का आधार मानते हैं । भारतीय मनीषीगण संगीत को योग से जुड़ते हुए ईश्वर के साक्षात्कार का माध्यम मानते हैं ।

संगीत एक संश्लिष्ट कला है जिसमें रूपयोजना स्पष्ट नहीं होती। यह आत्माओं को सुख की अनुभूति प्रदान करती और सौन्दर्य अवगाहन का मार्ग प्रदान करती है। लोबनाइटी ने संगीत को परिभावित करते हुए कहते हैं, संगीत एक गूढ़ गणितीय प्रस्तुति है। यह एक मानसिक प्रक्रिया है जो आत्मा का सम्वर्द्धन करती है । यह अन्धों का प्रत्यक्ष दर्शन है। यह उस समय भी रहेगा जब संसार नहीं रहेगा। शापेनहावर के अनुसार संगीत दृश्य जगत से भिन्न एक गुप्त मानसिक तथा आत्मिक अदृश्य सर्वशक्तिमान की समीपना प्रदान करता है ।

स्पेंग्लर (Spengler) के अनुसार, "संगीत मानवीय बोध की सर्वश्रेष्ठ कला है । यह न तो जन्मजात सहज प्रवृत्ति है, न अतिश्योक्ति है, न ज्ञान का तत्त्व है, न बौद्धिक व्यापार है और न अन्तःप्रेरणा है । भावात्मक, अनुभव, भावनाओं, विचारों का स्वरों द्वारा प्रस्तुतीकरण जो लयात्मक हो वही संगीत-कला है"।[8] संगीत निष्पादन के प्रमुख पक्ष संयोजन, सामंजस्य, वाद्ययन्त्र, लयात्मकता, ध्वनि और गति है ।

भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं सौन्दर्य

विश्व के प्रायः सभी संगीतज्ञ सामान्य रूप से इस तत्त्व का विश्वास करते हैं कि सुर एवं छन्द इन दोनों का सम्मिलित रूप ही संगीत का तल है। भारतीय संगीतशास्त्रकारों ने सुर सम्बन्धित चर्चा के आधार के रूप में ध्वनि, नाद, श्रुति, स्वर, आदि विषयों को यथेष्ट महत्त्व

प्रदान किया है। इनमें से अनेकों का मत यह भी है कि शब्द एवं सुर के हरगौरीमिलन में ही संगीत का सौन्दर्य निर्भर करता है, जो कविगुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर का भी मत है एवं यह शब्द और सुर जब छन्द के साथ सम्मिलित होकर गंगा-यमुना की धारा जैसे हमारे ह्रदय के अन्त तक स्पर्श करता है तब ही हम सुन्दर का आविष्कार कर सकते हैं। "रवीन्द्र-दर्शन में 'सुन्दर' संयम और सुमिति का प्रकाश है। भारतीय संगीत को भी उसी आदर्श से देखा गया है"।[9] भारतीय संगीत का मूल तत्त्व एक दार्शनिक विचारधारा से बूनी हुई है। ऋषिगण संगीत के माध्यम से जो सुन्दर की कल्पना की है उसका मूल तल में है स्वयं ब्रह्मस्वरूप 'नाद'। अतः भारतीय संगीत में सुन्दर का धारणा स्वयं ईश्वर-कल्पना से युक्त है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत अपने आपको राग द्वारा व्यक्त करता है। राग भारतीय संगीत की बुनियाद है, बीज है, आत्मा है और सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्वरूप है। भारतीय संगीत के इतिहास में राग पद्धति पल्लवित हुई है और यह राग पद्धति वर्तमान समय तक इतनी समृद्ध एवं परिपक्व हुई है कि सम्पूर्ण विश्व में इसके समान कोई अन्य पद्धति विकसित नहीं हुई।

राग शब्द को संगीत आचार्य ने अनेक अर्थों में प्रस्तुत किया है। राग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु 'रंज' से हुई है, जिसका अर्थ है - रंजक वस्तु। अतः रंजकता से ही राग है। राग की परिभाषा का मूल अर्थ रंजक होने से राग में सौन्दर्य-तत्त्व का होना आवश्यक है। जो सुन्दर है वही रंजक है। जो कुरूप है, वह रंजक नहीं हो सकता। राग शब्द के अनेक अर्थ है, जो इस प्रकार है - 1. वर्ण, रंग, रंजक वस्तु 2. लाल रंग, लालिमा 3. प्रेम-स्नेह, प्रणयोन्माद 4. भावना, संकेत, सहानुभूति, हित 5. हर्ष, आनन्द 6. क्रोध, रोष 7. प्रियता, सौन्दर्य 8. संगीत के राग 9. संगीत माधुर्य 10. खेद, शोक 11. लालच, ईर्ष्या आदि"।[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि राग के अनेक अर्थ है। ये सभी अर्थ मुख्यतः तीन भाव व्यक्त करते हैं - रंग, भाव और सांगीतिक ध्वनि। यद्यपि राग शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है, किन्तु यहाँ संगीत से सम्बन्धित अर्थ का ही प्रयोग किया गया है। राग का अर्थ ऐसी विशेष ध्वनि से है जो मन को रंजकता प्रदान करते है और विभिन्न प्रकार के भावों एवं मानसिक दृश्यों को उभारते हैं। रंजकता से तात्पर्य आनन्द प्रदान करना है और वह विशेष

आनन्द जो मानसिक सुख देता है। इसलिए संगीत द्वारा उपलब्ध आनन्दानुभूति उच्च स्तर की होती है, क्योंकि वह मानसिक सुख की अनुभूति है।

संगीत के कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्व जो रागों में भावों को अभिव्यक्त करने में सहायक होते हैं। ये तत्त्व निम्न प्रकार है, जैसे - नाद, श्रुति, स्वर, वर्ण, अलंकार, स्थाय, गमक, मीण्ड, कण, तान, काकु आदि। इन्हीं तत्त्वों के उचित सम्मिश्रण से विभिन्न रागों की रचना होती है।

प्रत्येक राग किसी विशेष भाव को व्यक्त करता है। विभिन्न स्वर-समूह के अवलोकन से यह विदित होता है कि कोई स्वर-समूह किसी के दु:खी मन के भाव को व्यक्त कर रहा है और कोई अन्य स्वर-समूह, अपने प्रियतम के मिलने पर खुशी के भाव को व्यक्त कर रहा है। अत: प्रत्येक राग का एक अपना निजी भाव होता है जो प्रयोग किए जा रहे स्वर पर निर्भर होता है, यह स्वर सुननेवाले के मन पर ऐसा प्रभाव डालते हैं कि श्रोता भी मानसिक रूप से उन्हीं भावों को महसुस करने लगता है।

स्वामी प्रज्ञानानन्दजी के अनुसार, "A Raga is a psycho-material object as it is an objective expression of the subjective feeling of the mind. The mental feelings or sentiments are Materials like Sahitya, Chhanda, Tala, Laya etc. which are ingredients of a Raga. A Raga is first designed ideally in the mind and then is projected outside in material sound form. So, process of both construction and manifestation of a Raga, mind and matter are active. He further says, "The Ragas are in truth, the different settings of living emotions that work as means to an end".[11]

रागों के विषय में O.C. Ganguli अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं, "Ragas have, therefore, the power of producing certain effects and each is supposed to have an emotional value or signification which may be called the 'ethos' of the Ragas. Raga may be said to stand for the language of the soul, expressing itself variously, under the stress of sorrow or the inspiration of joy, under the storm of passion, or the thrills of the expectation, under the throes of lovelonging, the songs of separation or the joy of union".[12]

संगीत का सौन्दर्य, राग, ताल, लय और गीत पर तो निर्भर होता ही है, काकु-भेद भी उसका महत्त्वपूर्ण अंग है। स्वरों को विशिष्ट गति देकर समुचित प्रभाव उत्पन्न करने की दृष्टि से उन्हें उच्चता-निचता के साथ प्रदर्शित करना 'काकु-भेद' कहलाता है। इसलिए किसी एक ही स्वर समुदाय अथवा एक ही शब्द के उच्चारण द्वारा संगीतकार श्रोता के हृदय में भिन्न-भिन्न भाव उत्पन्न करने में सफल रहता है। एच. ए. पोपले राग में स्वरों के क्रम और स्वर-समूहों के प्रयोग की महत्त्व बताते हुए कहते है - "Ragas are different series of notes within the octave which from each other by the prominence of certain fixed notes and by the sequence of particular notes".[13]

चाहे उत्तर-भारतीय संगीत हो या दक्षिण-भारतीय, राग भारतीय शास्त्रीय संगीत का महत्त्वपूर्ण तथा प्रधान विषय है। गणित की दृष्टि से देखा जाए तो, स्वरों के विभिन्न संयोग से असंख्य रागों की रचना सम्भव है। रागों की रचना के लिए शास्त्र में कहे गए प्राचीन दश नियम (लक्षण) जैसे - ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, मन्द्र, तार, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवत्व, औड़वत्व आदि के अनुशासन को माना जाता है। वर्तमान में इन नियमों की अनुशासन शास्त्र सम्मति से कुछ शिथिल हो गया है। सामग्रिक रूप से इन नियमों की प्रकटता से ही कोई राग सुन्दर रूप से प्रस्फुटित हो सकता है। क्योंकि श्रोताओं के मन को रंजित करना राग का सर्वप्रथम कार्य है।

राग-रागिनियों का प्रधान लक्षण है वादी-सम्वादी का सम्बन्ध। एक राग जब इन दो स्वरों को केन्द्रित कर सुर-विस्तार की राह पर चलता है तब ही राग में संयमता का चित्र देखा जाता है। इस संयमता के द्वारा ही राग का सौन्दर्य विकसित होता है। विभिन्न स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध के कारण राग का यह सौन्दर्य स्फुटित होता है। मानव को पूर्णरूप से आकृष्ट करने की विशाल क्षमता सुर में है। अतः राग आश्रित स्वर-समाहार जब प्रकृत रूप से सुर के आश्रय से प्रसारित होता है तब हम संगीत के माध्यम से असामान्यता को अनुभव करते है तथा हमारे मन सुन्दर तक पहुँच पाता है।

वर्तमान समय में प्रचलित रागों की संख्या बहुत कम है। रागों की इस सीमित संख्या का कारण यही है कि स्वरों के मेल के अन्तर्गत उन्हीं स्वर-समुदायों को राग का पद दिया गया है, जिनमें रंजकता है, नाद सौन्दर्य है तथा कलात्मक वातावरण निर्माण करने की

क्षमता है। सौन्दर्य का सम्बन्ध राग से प्रारम्भ से ही रहा है। प्राचीन विद्वानों ने 'रंजयते इति रागः' कहकर राग का सम्बन्ध सौन्दर्य से जोड़ा है। राग का साध्य रंजकता तथा सौन्दर्य है। कभी सौन्दर्य स्वर से, तो कभी लय से स्फुटित होता है। प्रत्येक राग का अपना एक स्वरूप, एक व्यक्तित्त्व होता है, जो उसमें लगनेवाले स्वर, उनके परस्पर सम्बन्ध, उनके स्वर-स्थान, विश्रान्ति-स्थान, स्वर-लगाव, कण, मीण्ड आदि पर निर्भर करता है। प्रत्येक राग में ही सात शुद्ध तथा पाँच विकृत स्वरों में से कुछ स्वर लगते हैं, पर समान स्वर होने पर भी उनके लगाने का ढंग, स्वरों के अल्पत्व व बहुत्व के कारण प्रत्येक राग की आकृति अलग हो जाती है। राग के तीन घटक हैं - 1. आलाप 2. प्रबन्ध तथा 3. तान। गीत या धुन राग के बाह्य रूप का निर्माण करते हैं, पर आलाप राग की आत्मा है, राग विस्तार में ही राग की सुन्दरता केन्द्रित रहती है। राग का सारा सौन्दर्य विभिन्न प्रकार के स्वर लगाने पर निर्भर करता है। प्रत्येक स्वर का एक सौन्दर्य होता है। आवश्यकता है उसे बाहर लाने की। राग के प्रस्तुत करने से पहले गायक या वादक के मन में सौन्दर्य का सूक्ष्म रूप होता है। उसी को वह नादात्मक रूप में या लयात्मक रूप में व्यक्त करता है। कलाकार के मन का सौन्दर्य-आधार बाह्य सौन्दर्य-आधार से एकरस हो जाता है। इस सौन्दर्य-आधार में निरन्तरता, मधुरता, अखण्डता आदि तत्त्वों से एक पृष्ठभूमि तैयार होती है। इसी के आधार पर एक-के-बाद-एक रूप का सृजन होता है। प्रत्येक रूप उस पृष्ठभूमि में एकाकार होता रहता है। राग प्रारम्भ करने के बाद आलाप द्वारा राग का वातावरण बना दिया जाता है। तानों में तो कई बार राग का शुद्ध रूप नहीं रह पाता, फिर भी स्वर विस्तार के द्वारा राग का वातावरण इस प्रकार कलाकार व श्रोताओं के दिल व दिमाग में छा जाता है कि थोड़ी सी अव्यवस्था पता नहीं चलती। स्वर-समूह का विस्तार, गणित की दृष्टि से असंख्य रीति से हो सकता है, पर उनमें से विशेष प्रकार के विस्तार को चुनकर विविध प्रकार गायकियों का निर्माण हुआ है।

अधिकतर विद्वानों ने माना है कि भारतीय रागों में सौन्दर्य-बिन्दु तीन हैं - 1. श्रोताओं में उत्कण्ठा निर्माण करना 2. अपेक्षित अवस्था तक बढ़ाना 3. उत्कण्ठा की समाप्ति करना। रागों के आलाप में उत्कण्ठा का निर्माण होता है। जब तक सम नहीं आती, दिमाग में तब तक तनाव बना रहता है, जो मुखड़ा लेकर सम पर आते ही समाप्त हो जाता है। आलाप में कौनसा स्वर या स्वर-समुदाय किस प्रकार उत्कण्ठा जाग्रत करता है, यही सौन्दर्य-बिन्दु है, तिहाइ लेकर सम तक आने से पहले उत्कण्ठा रहती है और सम पर आते ही एक अपूर्व

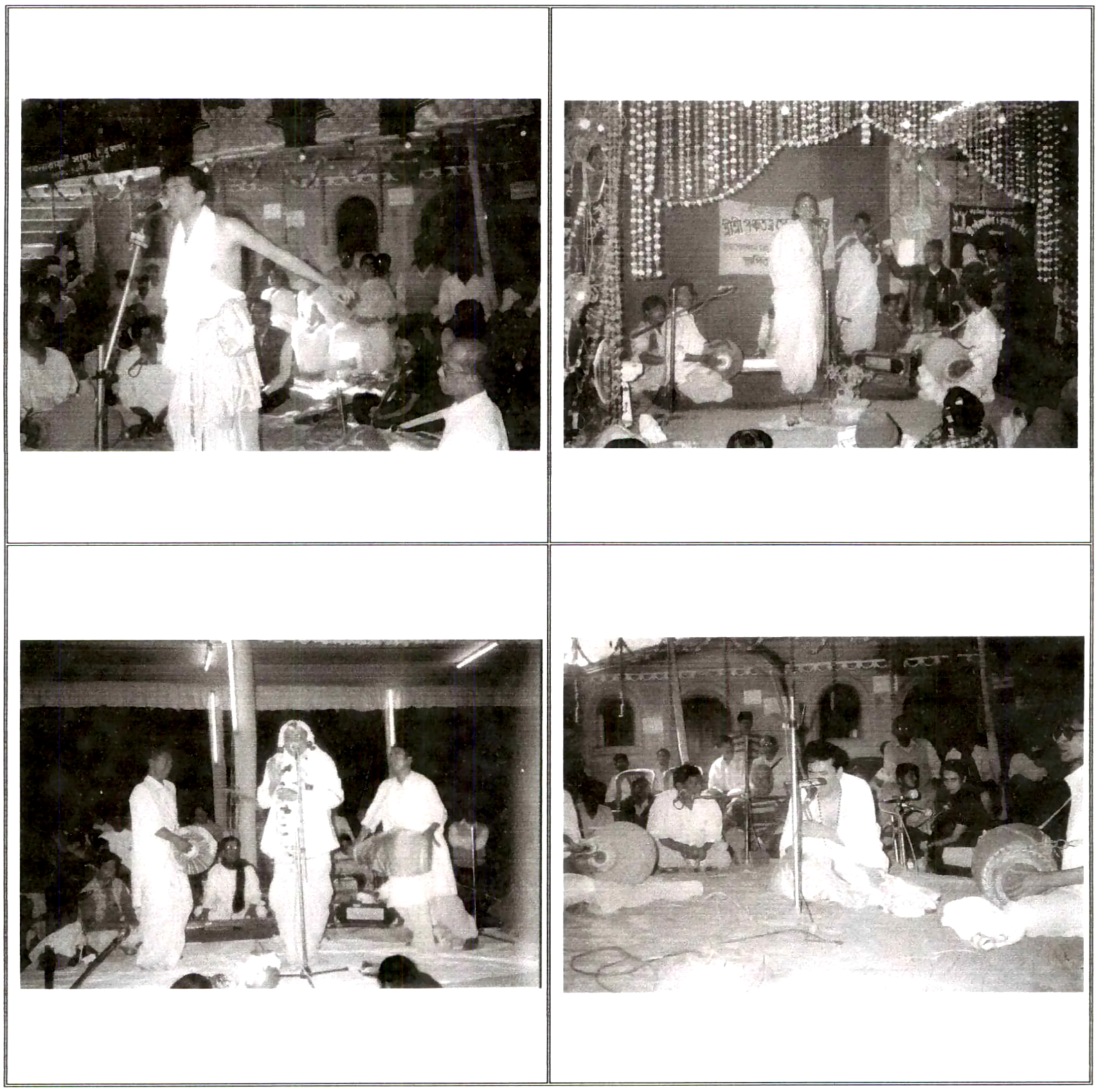

चित्र : लीला कीर्त्तन में व्हायोलिन का प्रयोग

सौन्दर्य साकार हो उठता है। सम पर आना एक मानसिक सन्तुलन प्रदान करता है। आलाप के प्रत्येक रूप में कभी उत्कण्ठा जाग्रत हो उठती है तो कभी विसर्जन, यही तो आलाप का सौन्दर्य है। आलाप में राग के सौन्दर्य को व्यक्त करने की विधियाँ एवं दिशाएँ हैं। प्रतिभा सम्पन्न कलाकार अपनी शिक्षा, रियाज़ और चिन्तन के आधार पर विभिन्न सौन्दर्य-तत्त्वों का प्रयोग कर आलाप द्वारा श्रोताओं को सौन्दर्यानुभूति की चरम सीमा तक ले जाता है। जहाँ आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है ओर अलौकिक सुख की अनुभूति होती है।

राग प्रस्तुतीकरण में प्रथम चरण आलाप का तथा द्वितीय चरण बन्दिश का होता है। बन्दिश में राग का स्वरूप तथा चलन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। राग की आकृति स्पष्ट होकर सीमित रूप से सामने आ जाती है, जिसमें राग के सभी नियमों का पालन होता ही है और साथ ही साथ सौन्दर्य-तत्त्व भी विशेष रूप से दिखाई देते हैं। बन्दिश राग का दर्पण है और राग की छबि शास्त्रीय नियमों तथा राग भाव का पालन करते हुए अत्यन्त सौन्दर्यात्मक ढंग से प्रस्तुत की जाती है। बन्दिश के अनेक प्रकार है जिनसे भारतीय संगीत को विविधता प्राप्त होती है। प्रत्येक गीत प्रकार राग-सौन्दर्य के नवीन रूप को प्राप्त करता है।

वास्तव में तीव्र गति के स्वर समुदायों, जैसे - तान आदि द्वारा राग का मुख्य भाव एवं प्रकृति पूर्ण रूप से उभर कर सामने नहीं आती, इसलिए आलाप में राग का स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट होकर सामने आ जाता है, क्योंकि आलाप द्वारा राग में प्रयुक्त होनेवाले प्रत्येक स्वर को ठीक मान प्राप्त होता है। अतः राग प्रस्तुतिकरण में आलाप ही मुख्य माना गया है। आलाप का मुख्य उद्देश्य भी राग की प्रकृति एवं व्यवस्थित रूप से भाव को प्रदर्शित करता है। राग-संगीत का आनन्द श्रोता तभी उठाते हैं, जब कलाकार उसमें पूर्णत डूब चुका होता है। तकनीक और स्वरों का माधुर्य दोनों के मिलने से आनन्दमय संगीत का सृजन होता है। इसलिए किसी राग को प्रस्तुत करने में उसकी शुरूआत, बढ़त और समापन सभी की ओर कलाकार की अवलोकन दृष्टि का होना अत्यावश्यक है।

"जब हम कोई वाद्य में शास्त्रीय वादन सुनते है या कण्ठ द्वारा सिर्फ आलाप-विस्तार को श्रवण करते है तब हमें कोई वाणी या भाषा सुनने को नहीं मिलती है। सिर्फ 'Sounds artistically combined' को ही हम इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करते हैं। शैल्पिक रूप से कलाकार जब शब्द-समूह को किसी राग द्वारा प्रस्फुटित करता है तब विशेष-विशेष स्वर-विन्यास को ही

महत्त्व देता है। दरबारी कान्हड़ा या मालकौंस राग का प्रत्यक्ष निवेदन भिन्न है। अर्थात् अलग-अलग राग सौन्दर्य की जो विविधता को स्फुटित करता है वह मूलतः निर्भर करता है स्वर-विन्यास, सुर तथा वादी-सम्वादी के स्वर-संगति में ही। भारतीय राग-संगीत के क्षेत्र में सुन्दर को एक 'End of itself ' कहना अनुचित नहीं होगा"।[14] प्राचीन शास्त्रकारों द्वारा राग-रागिनियों के उत्पत्ति विषयक अधिक तथ्य नहीं पाए जाते हैं, परन्तु विकास का एक धारावाहिक इतिहास अवश्य मिलता है। उस इतिहास को जिन्होंने अनुसरण किया उन्हें यह जानकारी है कि भारतीय संगीत कभी भी एक ही स्थान पर स्थिर नहीं था। उसमें जिस प्रकार से 'देशी' संगीत ने अपना स्थान बनाया, उसी प्रकार से पारसियान राग-रागिनियों का भी मिश्रण हुआ स्वाभाविक रूप से ही। दक्षिण भारतीय संगीत के साथ उत्तर भारतीय संगीत के आलाप-विस्तार अथवा अन्य अलंकारिक क्षेत्र में भिन्नता रहते हुए भी राग-रूप में उत्तर व दक्षिण दोनों पद्धति एक ही गोत्र की है, उनमें अपने-अपने नियमों से स्वाधीन सांगीतिक विनिमय चल रहा है। अतः यह मिश्रण एवं स्वाधीनता का विशेष कारण सौन्दर्य-बोध के प्रति मानसिक आकृष्टता ही है। इस विषय को ध्यान में रखकर हिन्दू संगीत कभी भी एक ही स्थान पर स्थिर नहीं रहा। विवर्तन के कारण राग-रूप में जिस प्रकार की भिन्नता देखने को मिलती है, उसी प्रकार गायन शैलियों का भी विभिन्न प्रकार से विकसित रूप देखा जाता है। केवल आलाप तथा ध्रुपद की विवर्तन से ही नहीं बल्कि विभिन्न प्रकार के मिश्रण के कारण भी शास्त्रीय राग-संगीत का सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है। प्रकृत रूप से संगीत-कला के माध्यम से आनन्द प्राप्ति के कारण ही मानव ने इस स्वाधीनता को युगों से ग्रहण किया है। अमीर खुसरो यदि सुल्तानों के दरबार में आकर पारसियान राग-रागिनियों को नहीं सुनाते तो शायद यमन अथवा काफी जैसे भाव-गम्भीर तथा श्रुतिमधुर रागों की सृष्टि कभी नहीं होती, अथवा बैजु बावरा अगर दिल्ली दरबार में गायन प्रस्तुति के लिए प्रेरित होकर नए शैली की सृष्टि नहीं करते तो ध्रुपद संगीत की धरोहर आज कहा जाकर खड़ी होती यह कहना कठिन है। वास्तव रूप से कलाकार-कलावन्तगण यदि स्वयं के मन में इस प्रकार प्रेरणा और भाव-रूपों को जन्म न देते तो वे नए राहीओं के मार्गदर्शक न हो पाते। मियाँ तानसेन ने जब दरबारी कान्हड़ा या मियाँ मल्हार जैसे रागों की सृष्टि की तब केवल षड़ज-गन्धार-पंचम आदि स्वरों का गणितीय-समाहार ही उन्होंने नहीं किया बल्कि एक विशेष भावरूप की ही साधना की थी। यही बात उनके पुत्र विलास खाँ के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। राग बिलासख़ानी

तोड़ी के विषादपूर्ण और गम्भीर सुर-माधुर्य कोई भी संगीत-प्रेमी श्रोताको विलास खाँ के स्वभाव और आध्यात्मिकता को समझाने में सहायक है। अत: राग सृष्टि में संगीत के विभिन्न महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के साथ भावाभिव्यक्ति का सम्बन्ध सर्वदा रहा है, वही भावाभिव्यक्ति भारतीय शास्त्रीय संगीत को सौन्दर्य की चरम सीमा तक ले जा सकता है। यह सौन्दर्य कलाकार की शिक्षा, बुद्धि, चिन्ता, अभ्यास आदि विषयों पर निर्भर रहता है। यह विषय सभी व्यक्तिओं में समान नहीं होता। भिन्न-भिन्न कलाकार जब राग-रूप के अनुसार अपनी-अपनी बुद्धि, चिन्ता, साधना द्वारा कला प्रदर्शन कराते है तो एक ही राग से हमें विभिन्न प्रकार की सोन्दर्यानुभूति तथा आनन्दानुभूति की प्राप्ति होती है। कविगुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर सृष्ट संगीत 'रवीन्द्र संगीत' से विभिन्न राग-रागिनियों द्वारा जो सौन्दर्य हम प्राप्त करते हैं वह उनकी स्वयं के चिन्तन और साधन का ही फल है। एक ही राग के आश्रय से विभिन्न प्रकार की अनुभूति तथा भाव-सौन्दर्य पूर्ण संगीत रचना में वह समर्थ थे। अत: भारतीय संगीत के वैशिष्ट्य में विभिन्न प्रकार के रस, अनुभूति तथा व्यंजना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तथा भारतीय संगीत की ध्यान-कल्पना भी सौन्दर्य पर ही आधारित है।

सामान्य रूप से सुन्दर वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान मानव दृष्टि के माध्यम से ही प्राप्त करता है, परन्तु श्रवण-इन्द्रिय जहाँ सुन्दर को ढूँढती है वहाँ ही संगीत और सुन्दर के सम्बन्ध का आविष्कार किया जा सकता है। प्लटिनास (Plotinus) के अनुसार, "Beauty appeals mainly to the sight, but also to the hearing through compositions of wards : it is also in all music, for both melodies and rhythms are beautiful".[15] संगीत से जिस सौन्दर्य को मानव आविष्कार करता है, वह उसे एक ऐसी विशेष कल्पना-जगत में ले जाता है जहाँ रस, भाव तथा अन्त में आनन्द द्वारा मानव मोहित हो जाता है। संगीत के माध्यम से प्राप्त सौन्दर्य तथा आनन्द मानव के केवल श्रवण-इन्द्रिय को ही नहीं बल्कि मननशीलता को भी सन्तुष्ट करता है। रसिक मन का यह सन्तुष्ट होना केवल संगीत से प्राप्त सौन्दर्य पर ही निर्भर करता है। पं. कृष्ण राव ने अपने ग्रन्थ 'Psychology of music' में कहा है कि, "It is the melody of Indian music alone that can express internal emotions faithfully".[16] यह सिर्फ उन्होंने भारतीय संगीत के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व-संगीत के लिए भी कहा है क्योंकि संगीत को विश्वमानव की भाषा तथा Universal language कहा जाता है। भारतीय संगीत में एक तरफ जिस प्रकार मिलन हुआ

काव्य, रस तथा सौन्दर्य-तत्त्व का, उसी प्रकार दूसरी तरफ मिलन हुआ है दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा नीति-नियममूलक क्रियाकार्य का। इने सभी के संयोग के फलस्वरूप भारतीय संगीत सभ्यता की एक महान देन स्वरूप है।

व्हायोलिन वाद्य पर शास्त्रीय संगीत के प्रस्तुतिकरण का सौन्दर्य

पाश्चात्य संगीत व भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रस्तुतिकरण की पद्धति सर्वथा भिन्न है। विदेशी संगीत के प्रस्तुतिकरण में भाग लेनेवाले कलाकार (गायक-वादक) ज़मीन पर खड़े होकर अपनी कला प्रस्तुत करते है, जबकि भारतीय शास्त्रीय संगीत को ज़मीन पर बैठकर प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए भारतीय शास्त्रीय संगीत को 'बैठा-संगीत' कहा जाता है। वैसे भारतीय लोक-संगीत, सुगम-संगीत, सिने-संगीत आदि को बैठने की शर्त लागु नहीं होती, परन्तु भारतीय शास्त्रीय अथवा राग-संगीत की प्रतिष्ठा ज़मीन पर बैठकर गाने बजाने में ही है। और प्रस्तुतिकरण का यह ढंग, उत्तरी व दक्षिणी शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में सर्वमान्य व सर्वसामान्य नियम है।

भारतीय संगीत के गज़ से बजाए जानेवाले वाद्य यथा - सारंगी, दिलरूबा, इसराज आदि ज़मीन पर बैठकर बजाए जाते है। इन वाद्यों पर गज़ का संचालन वाद्य के निचले भाग में घुड़च के पास होता है व स्वरों का प्रयोग वाद्य के ऊपरी भाग में होता है। इसके ठीक उलट प्रक्रिया व्हायोलिन पर होती है। व्हायोलिन में साऊण्ड बाक्स पर घुड़च (BRIDGE) के पास गज़ संचालन होता है और सिर (HEAD) की ओर फिंगरबोर्ड पर स्वरों का प्रयोग होता है। ज़मीन पर बैठकर व्हायोलिन वादन करने के लिए अन्य भारतीय वाद्यों के समान उचित व उपयुक्त बैठक तैयार होने में कुछ समय लगा होगा। अन्य भारतीय गज़ वाद्यों के वादकों का बायाँ हाथ (अंगुली संचालक) एकदम स्वतन्त्र रहता है। पाश्चात्य ढंग से संगीत बजानेवाले व्हायोलिन वादकों का बायाँ हाथ फिंगरबोर्ड का आधार बन जाता है और वह राग की प्रकृति अनुसार मीण्ड, गमक, घसीट आदि क्रिया के लिए असमर्थ हो जाता है। कुछ वादकों ने ज़मीन पर बैठकर या खुर्सी पर बैठकर व्हायोलिन के फिंगरबोर्ड, नेक को पाश्चात्य ढंग से हवा में रखकर वादन किया। ऐसी स्थिति में बायाँ हाथ नेक से संलग्न होकर मीण्ड, घसीट आदि प्रक्रियाएँ सीमित रही। व्हायोलिन के तारों की TUNING व गज़ संचालन पाश्चात्य ढंग से ही होता है। अतः ज़मीन पर बैठकर किए गए व्हायोलिन वादन में भारतीय राग-संगीत

सुनने में भारतीय की अपेक्षा पाश्चात्य पद्धति का आभास देता था। आज भी हमारे यहाँ कुछ वादक ज़मीन पर तो बैठते है, परन्तु नेक को बाये हाथ का आधार देकर उपरोक्तानुसार व्हायोलिन पर भारतीय राग-संगीत बजाते है। इस ढंग से किए गए राग-संगीत का वादन, राग की प्रकृति, राग का रस, राग का स्वभाव, राग सौन्दर्य आदि बातों में सीमित रहकर परिपूर्ण भारतीय शैली का व्हायोलिन वादन प्रतीत नहीं होता।

व्हायोलिन की भारतीय बैठक में व्हायोलिन वाद्य वादक की गरदन और दाहिने पेर की एड़ी के बीच स्थिर हो जाने से वादक का बायाँ हाथ मीण्ड, गमक आदि क्रियाओं के लिए स्वतन्त्र हो जाता है और भारतीय संगीत के रागों का प्रस्तुतिकरण (RENDERING) उचित ढंग से होना सम्भव हो जाता है।

व्हायोलिन पर भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रस्तुतिकरण का सौन्दर्य व्हायोलिन की इसी बैठक पर निर्भर करता है। भारतीय बैठक में व्हायोलिन वादन करते समय गज़ का संचालन घुड़च के पास करते हुए उसे काबु (CONTROL) में रखने के लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है, क्योंकि बैठक में व्हायोलिन का गज़ संचालन फिंगरबोर्ड के ऊपर होने के कारण गज़ का झुकाव फिंगरबोर्ड की ओर होकर गज़ घुड़च (BRIDGE) से दूर, नीचे की ओर खिचक ने की सम्भावना रहती है, जिससे तारों पर होनेवाली गज़ की रगड़ (STRECHING) प्रभावित होकर व्हायोलिन की आवाज़ में कर्कशता आ सकती है। बाये हाथ की कलाई को थोड़ा अन्दर की ओर मोड़कर हाथ की पाँचों अंगुलियाँ फिंगरबोर्ड के सम्पूर्ण क्षेत्र में सहजता से स्वर निर्माण कर सके, इस ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। एक बार बैठक जमने के बाद बैठक की स्थिति को अविचलित रखते हुए देड़-दो घण्टे तक व्हायोलिन पर रागदारी संगीत का प्रस्तुतिकरण यही उसकी (बैठक) प्रतिष्ठा है। इस बैठक में भारतीय संगीत के सभी प्रकार के, सभी स्वभाव के विविध रसानुभूति करनेवाले रागों का प्रस्तुतिकरण सम्भव है और इसी कारण विदेशी वाद्यों में व्हायोलिन एकमेव ऐसा वाद्य है, जिस पर भारतीय शास्त्रीय संगीत की परिपूर्ण अवतारणा और उसका सौन्दर्य प्रकट होता है।

भारतीय शास्त्रीय रागों की विशेषताएँ रागों में ही निहित है। किसी भी राग के लिए 10 नियम शास्त्र में कहे गए है, यथा - ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, मन्द्र, तार, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवत्व, औड़वत्व। प्राचीन जाति-प्रबन्ध संगीत के लिए इन नियमों का कठोरता से

पालन किया जाता था। जाति-प्रबन्ध गायन व इन 10 नियमों की छत्रछाया में ही राग-संगीत प्रचार में आया और रंजकत्त्व यह राग का आवश्यक तत्त्व होने के कारण इन नियमों की कठोरता को शास्त्र सम्मति से कुछ शिथिल बनाकर रागों को एक नियन्त्रण में बान्धकर रखा। इन 10 नियमों से प्रत्येक राग अनुशासित रहता है। यद्यपि यह नियम इतने कठोर नहीं है कि कलाकार की सर्जन-शक्ति ही कुण्ठित हो जाय, परन्तु इससे अनावश्यक व अनियन्त्रित छूट लेकर सर्जन के बहाने राग का अपना व्यक्तित्त्व ही नष्ट होने लगे तो उसे राग कहना यह राग का अपमान है। जैसे - राग में लगनेवाले एक स्वर के दोनों रूप (शुद्ध व विकृत) एकमेक से लगे हुएँ कभी प्रयोग में नही आने चाहिये। जैसे - केदार में दोनों मध्यम, शुद्धसारंग मे दोनों मध्यम, देस में दोनों निषाद्, आदि। ललित राग में भी दोनों मध्यम लगते है और एक के साथ दूसरा रूप जुड़ा रहे ये ललित के व्यक्तित्त्व के लिए आवश्यक है। इसलिए ललित राग को इस नियम के सन्दर्भ में अपवाद माना गया है। परन्तु ऐसा प्रयोग केदार में, शुद्धसारंग में बार-बार होता रहे तो वह रागहानि ही करेगा।

मन्द्र, तार की एक सीमा है। कौनसा राग मन्द्र-सप्तक में कितना नीचे हो या तार-सप्तक में कितना ऊँचा हो इस पर नियन्त्रण होना.चाहिये। भारतीय राग-संगीत के लिए मन्द्र के मध्यम से तार-सप्तक के पंचम तक का क्षेत्र पर्याप्त है। इसको बढ़ाकर कोई कलाकार मन्द्र को अतिमन्द्र और तार को अतितार-सप्तक तक बढ़ाये और यह क्रिया बार-बार करे तो भारतीय शास्त्रीय संगीत में पाश्चात्य संगीत का बास जाएगा ही। विवादी स्वर के प्रयोग पर भी नियन्त्रण होना चाहिये। विवादी स्वर राग में रक्ति लाकर रंजकता पैदा करता है या उस का अनुचित प्रयोग रागहानि भी करता है। विवादी का प्रयोग एक क्षण का ही होता है, वो एक क्षण महत्त्वपूर्ण है।

व्हायोलिन वादन में भारतीय शास्त्रीय संगीत को प्रस्तुत करते समय, व्हायोलिन के चार तार सा़ प़ सा प इस पद्धति से मिलाना, कुछ रागों के सन्दर्भ में आवश्यक हो जाता है, जैसे -

1. राग दरबारी कान्हड़ा, मालकौंस, पुरिया, आदि। दरबारी कान्हड़ा में रे सा, (नि)ध ध निप़, म़ प़ (नि)ध, (सा)नि सा यह मन्द्र-सप्तक में राग की आवश्यक स्वरावली है। मालकौंस में भी म़ ध नि, ध म़ नि, म़ ध नि सा इत्यादि स्वरविन्यास महत्त्वपूर्ण है।

पुरिया में मन्द्र-गन्धार तक जाने की आवश्यकता पड़ती है जैसे – मं ग, नि़ रे सा, नि़ ध़ नि़ मं ग, मं़ ध़ सा यह स्वर-वाक्य इस राग की कुछ पुरानी बन्दिशों में भी देखने मिलता है। दरबारी व पुरिया का क्षेत्र तार में गन्धार तक जाने में पर्याप्त है। गन्धार के ऊपर जाना राग के लिए आवश्यक नहीं। मालकौंस का क्षेत्र निश्चित नहीं है। मन्द्र के मध्यम से तार के मध्यम तक इस राग का सामान्य विचरण होता है। यद्यपि स़ा प़ सा प इस पद्धति में तार-सप्तक के स्वरों को निकालना कुछ कठिन होता है।

2. यमन, भूपाली, बिहाग, देस, जयजयवन्ति, बागेश्री, भीमपलासी आदि राग मन्द्र-पंचम से तार के गन्धार, मध्यम तक जा सकते है। उनका सामान्य विचरण मन्द्र-धैवत से तार के गन्धार तक ही रहता है। अतः इन रागों के लिए व्हायोलिन के चार तार प़ सा प सां इस प्रकार भी मिलाये जाय तो वह इन रागों की दृष्टि से पर्याप्त है।

3. मध्य व तार-सप्तक में विस्तार होनेवाले राग जैसे – बसन्त, परज, बहार, सोहनी, हिण्डोल, कालिंगड़ा आदि राग भी प़ सा प सां पद्धति से मिलाये गए तारों पर विस्तार से बजाए जा सकते है। स़ा प़ सा प इस पद्धति में जब उपरोक्त राग बजाए जाय तब G D तार (मन्द्र स़ा प़) यह करीब-करीब अछूत रह जाते है। G D A E (_ _ सा प) इन दो तारों पर ही काम चल जाता है, परन्तु तार-सप्तक में विस्तार (जो आवश्यक है) करने में वही अडचन पैदा होती है। व्हायोलिन मे पाँच तार लगाकर बजाने की कल्पना का श्रोत इसी अडचन के कारण से है। G D A E के पहिले C तार लगाकर, इन पाँच तारों को स़ा प़ सा प सां इस प्रकार मिलाकर भारतीय शास्त्रीय संगीत के समस्त रागों का वादन सहजता हो सकता है। पाँच तारों के पाँच कोण (Angles) होने से गज़ से चालन पाँचों कोणों में बिना आजू-बाजू के तारों को टकराये बराबर चलता रहे इसकी सावधानी रखनी जरूरी है।

भारतीय राग-संगीत को प्रस्तुत करने के लिए जो उचित बैठक बतायी गई है, उसमें बाँया हाथ (अँगुलिया) स्वतन्त्र हो जाता है। कतिपय रागों में प्रयुक्त घसीट और मीण्ड युक्त स्वर-संगतियाँ जैसे – सामे, मरेपे, धमे, धगपे, परे, पऽऽरे, निमपे, मग मगमे, रेंगमपे, पसां, रेंनिधप इत्यादि प्रक्रियाएँ बाये हाथ की अँगुलियों से करना सहज-सम्भव होता है। राग-संगीत प्रस्तुति में रागों में प्रयुक्त स्वर, स्वर की लघुता व दीर्घता, विशिष्ट स्वर-संगति, स्पर्श स्वर, कण, मीण्ड, घसीट इन सभी प्रक्रियाओं का आरोही-अवरोही प्रयोग, मन्द्र-मध्य, मध्य-तार

अथवा तीनों सप्तकों में विचरण, वादी-सम्वादी स्वरों का महत्त्व वगैरह ढेर सारी बातों का ध्यान रखना पड़ता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत (राग-संगीत) को स्वतन्त्र रूप से (Solo) प्रस्तुत करनेवाले किसी भी गायक या वादक को कोई भी राग प्रस्तुत करने के पूर्व उस राग के सन्दर्भ में व्यवस्थित जानकारी होना आवश्यक है। इस प्रकार व्हायोलिन वाद्य पर भी शास्त्रीय संगीत प्रस्तुतिकरण में इन सारी बातों पर ध्यान रखने से प्रस्तुतिकरण की सौन्दर्य अधिक बढ़ जाती है।